मेघदूत

कालिदास

पूर्वमेघ

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत:

शापेनास्तग्ङ:मितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तु:।

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।

कोई यक्ष था। वह अपने काम में असावधान हुआ तो यक्षपति ने उसे शाप दिया कि वर्ष-भर पत्नी का भारी विरह सहो। इससे उसकी महिमा ढल गई। उसने रामगिरि के आश्रमों में बस्ती बनाई जहाँ घने छायादार पेड़ थे और जहाँ सीता जी के स्नानों द्वारा पवित्र हुए जल-कुंड भरे थे।

2

तस्मिन्नद्रो कतिचिदबलाविप्रयुक्त: स कामी

नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्त प्रकोष्ठ:

आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु

वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।।

स्त्री के विछोह में कामी यक्ष ने उस पर्वत

पर कई मास बिता दिए। उसकी कलाई

सुनहले कंगन के खिसक जाने से सूनी

दीखने लगी। आषाढ़ मास के पहले दिन पहाड़ की

चोटी पर झुके हुए मेघ को उसने देखा तो

ऐसा जान पड़ा जैसे ढूसा मारने में मगन

कोई हाथी हो।

3

तस्य स्थित्वा कथमपि पुर: कौतुकाधानहेतो-

रन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।

मेघालोके भवति सुखिनो•प्यन्यथावृत्ति चेत:

कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।

यक्षपति का वह अनुचर कामोत्कंठा

जगानेवाले मेघ के सामने किसी तरह

ठहरकर, आँसुओं को भीतर ही रोके हुए देर

तक सोचता रहा। मेघ को देखकर प्रिय के पास में सुखी

जन का चित्त भी और तरह का हो जाता

है, कंठालिंगन के लिए भटकते हुए विरही

जन का तो कहना ही क्या?

4

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी

जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।

स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै

प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार।।

जब सावन पास आ गया, तब निज प्रिया

के प्राणों को सहारा देने की इच्छा से उसने

मेघ द्वारा अपना कुशल-सन्देश भेजना चाहा।

फिर, टटके खिले कुटज के फूलों का

अर्घ्य देकर उसने गदगद हो प्रीति-भरे

वचनों से उसका स्वागत किया।

5

धूमज्योतिः सलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः

संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनुषु।।

धुएँ, पानी, धूप और हवा का जमघट

बादल कहाँ? कहाँ सन्देश की वे बातें जिन्हें

चोखी इन्द्रियोंवाले प्राणी ही पहुँचा पाते हैं?

उत्कंठावश इस पर ध्यान न देते हुए

यक्ष ने मेघ से ही याचना की।

जो काम के सताए हुए हैं, वे जैसे

चेतन के समीप वैसे ही अचेतन के समीप

भी, स्वभाव से दीन हो जाते हैं।

6

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोन:।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतो हं

याण्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।।

पुष्कर और आवर्तक नामवाले मेघों के

लोक-प्रसिद्ध वंश में तुम जनमे हो। तुम्हें मैं

इन्द्र का कामरूपी मुख्य अधिकारी जानता

हूँ। विधिवश, अपनी प्रिय से दूर पड़ा हुआ

मैं इसी कारण तुम्हारे पास याचक बना हूँ।

गुणीजन से याचना करना अच्छा है,

चाहे वह निष्फल ही रहे। अधम से माँगना

अच्छा नहीं, चाहे सफल भी हो।

7

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियाया:

संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां

बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहम्मर्या ।।

जो सन्तप्त हैं, है मेघ! तुम उनके रक्षक

हो। इसलिए कुबेर के क्रोधवश विरही बने

हुए मेरे सन्देश को प्रिया के पास पहुँचाओ।

यक्षपतियों की अलका नामक प्रसिद्ध

पुरी में तुम्हें जाना है, जहाँ बाहरी उद्यान में

बैठे हुए शिव के मस्तक से छिटकती हुई

चाँदनी उसके भवनों को धवलित करती है।

8

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ता:

प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता: प्रत्ययादाश्वसन्त्य:।

क: संनद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां

न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो य: पराधीनवृत्ति:।।

जब तुम आकाश में उमड़ते हुए उठोगे तो

प्रवासी पथिकों की स्त्रियाँ मुँह पर लटकते

हुए घुँघराले बालों को ऊपर फेंककर इस

आशा से तुम्हारी ओर टकटकी लगाएँगी

कि अब प्रियतम अवश्य आते होंगे।

तुम्हारे घुमड़ने पर कौन-सा जन विरह

में व्याकुल अपनी पत्नी के प्रति उदासीन

रह सकता है, यदि उसका जीवन मेरी तरह

पराधीन नहीं है?

9

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चाकतस्ते सगन्ध:।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमाला:
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाका:।।

अनुकूल वायु तुम्हें धीमे-धीमे चला रही है।
गर्व-भरा यह पपीहा तुम्हारे बाएँ आकर
मीठी रटन लगा रहा है।
गर्भाधान का उत्सव मनाने की अभ्यासी
बगुलियाँ आकाश में पंक्तियाँ बाँध-बाँधकर
नयनों को सुभग लगनेवाले तुम्हारे समीप
अवश्य पहुँचेंगी।

10

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
पव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्ध: कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्य:पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।।

विरह के दिन गिनने में संलग्न, और मेरी
बाट देखते हुए जीवित, अपनी उस पतिव्रता
भौजाई को, हे मेघ, रुके बिना पहुँचकर तुम
अवश्य देखना।

नारियों के फूल की तरह सुकुमार प्रेम-
भरे हृदय को आशा का बन्धन विरह में
टूटकर अकस्मात बिखर जाने से प्राय: रोके
रहता है।

11

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्का:।
आकैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्त:
सैपत्स्यन्ते नभसि भवती राजहंसा: सहाया:।।

जिसके प्रभाव से पृथ्वी खुम्भी की टोपियों
का फुटाव लेती और हरी होती है, तुम्हारे
उस सुहावने गर्जन को जब कमलवनों में
राजहंस सुनेंगे, तब मानसरोवर जाने की
उत्कंठा से अपनी चोंच में मृणाल के
अग्रखंड का पथ-भोजन लेकर वे कैलास
तक के लिए आकाश में तुम्हारे साथी बन
जाएँगे।

12

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुग्ड़मालिग्ड़च शैलं
वन्द्यै: पुंसां रघुपतिपदैरकिड़तं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य

स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम्।।

अब अपने प्यारे सखा इस ऊँचे पर्वत से
गले मिलकर विदा लो जिसकी ढालू चट्टानों
पर लोगों से वन्दनीय रघुपति के चरणों की
छाप लगी है, और जो समय-समय पर
तुम्हारा सम्पर्क मिलने के कारण लम्बे विरह
के तप्त आँसू बहाकर अपना स्नेह प्रकट
करता रहता है।

13

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्न: खिन्न: शिखरिषु पदं न्यस्यन्तासि यत्र
क्षीण:क्षीण: परिलघु पय: स्त्रोतसां चोपभुज्य।।

हे मेघ, पहले तो अपनी यात्रा के लिए
अनुकूल मार्ग मेरे शब्दों में सुनो-थक-थककर
जिन पर्वतों के शिखरों पर पैर टेकते हुए,
और बार-बार तनक्षीण होकर जिन सोतों
का हलका जल पीते हुए तुम जाओगे।
पीछे, मेरा यह सन्देश सुनना जो कानों से
पीने योग्य है।

14

अद्रेः श्रृंगं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-

र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धङ्गनाभिः।

स्नानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं

दिङ्नागानां पथि परिहरन्थूलहस्तावलेपान्।।

क्या वायु कहीं पर्वत की चोटी ही उड़ाये

लिये जाती है, इस आशंका से भोली

बालाएँ ऊपर मुँह करके तुम्हारा पराक्रम

चकि हो-होकर देखेंगी।

इस स्थान से जहाँ बेंत के हरे पेड़ हैं,

तुम आकाश में उड़ते हुए मार्ग में अड़े

दिग्गजों के स्थूल शुंडों का आघात बचाते

हुए उत्तर की ओर मुँह करके जाना।

15

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताः

द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते

बर्हेणेव स्फुरितरूचिना गोपवेषस्य विष्णोः।।

चम-चम करते रत्नों की झिलमिल ज्योति-सा

जो सामने दीखता है, इन्द्र का वह धनुखंड

बाँबी की चोटी से निकल रहा है।

उससे तुम्हारा साँवला शरीर और भी

अधिक खिल उठेगा, जैसे झलकती हुई

मोरशिखा से गोपाल वेशधारी कृष्ण का

शरीर सज गया था।

16

त्वय्यायत्त कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञै:

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनै: पीयमान:।

सद्‌य: सीरोत्कषणमुरभि क्षेत्रमारिह्य मालं

किंचित्पश्चाद्‌ब्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण।।

खेती का फल तुम्हारे अधीन है - इस उमंग

से ग्राम-बधूटियाँ भौंहें चलाने में भोले, पर

प्रेम से गीले अपने नेत्रों में तुम्हें भर लेंगी।

माल क्षेत्र के ऊपर इस प्रकार उमड़-

घुमड़कर बरसना कि हल से तत्काल खुरची

हुई भूमि गन्धवती हो उठे। फिर कुछ देर

बाद चटक-गति से पुन: उत्तर की ओर चल

पड़ना।

17

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना,

वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूट:।

न क्षुद्रोपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय

प्राप्ते मित्रे भवति विमुख: किं पुनर्यस्तथोच्चै:।।

वन में लगी हुई अग्नि को अपनी मूसलाधार
वृष्टि से बुझाने वाले, रास्ते की थकान से
चूर, तुम जैसे उपकारी मित्र को आम्रकूट
पर्वत सादर सिर-माथे पर रखेगा
क्षुद्रजन भी मित्र के अपने पास आश्रय
के लिए आने पर पहले उपकार की बात
सोचकर मुँह नहीं मोड़ते। जो उच्च हैं,
उनका तो कहना ही क्या?

18

छन्नोपान्त: परिणतफलद्योतिभि: काननाम्रै-
स्त्वय्यरूढे शिखरमचल: स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्याम: स्तन इव भुव: शेषविस्तारपाण्डु:।।

पके फलों से दिपते हुए जंगली आम
जिसके चारों ओर लगे हैं, उस पर्वत की
चोटी पर जब तुम चिकनी वेणी की तरह
काले रंग से घिर आओगे, तो उसकी शोभा
देव-दम्पतियों के देखने योग्य ऐसी होगी
जैसे बीच में साँवला और सब ओर से
पीला पृथिवी का स्तन उठा हुआ हो।

19

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुण्जे मुहूर्तं

तोयोत्सर्गं द्रुततरगतिस्तत्परं तर्त्म तीर्ण:।

रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां

भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमंगे गजस्य।।

उस पर्वत पर जहाँ कुंजों में वनचरों की वधुओं ने रमण किया है, घड़ी-भर विश्राम ले लेना। फिर जल बरसाने से हलके हुए, और भी चटक चाल से अगला मार्ग तय करना।

विन्ध्य पर्वत के ढलानों में ऊँचे-नीचे ढोकों पर बिखरी हुई नर्मदा तुम्हें ऐसी दिखाई देगी जैसे हाथी के अंगों पर भाँति-भाँति के कटावों से शोभा-रचना की गई हो।

20

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-

र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छे:।

अन्त:सारं घन! तुलयितुं नानिल: शक्ष्यति त्वां

रिक्त: सर्वो भवति हि लघु: पूर्णता गौरवाय।।

जब तुम वृष्टि द्वारा अपना जल बाहर उँड़ेल

चुको तो नर्मदा के उस जल का पान कर

आगे बढ़ना जो जंगली हाथियों के तीते

महकते मद से भावित है और जामुनों

के कुंजों में रुक-रुककर बहता है।

हे घन, भीतर से तुम ठोस होगे तो हवा

तुम्हें न उड़ा, सकेगी, क्योंकि जो रीते हैं वे

हलके, और जो भरे-पूरे हैं वे भारी-भरकम

होते हैं।

21

नीपं दृष्ट्वां हरितकपिशं केसरैरर्धरूढे-

राविर्भूप्रथममुकुला: कन्दलीश्चानुकच्छम्।

जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्या:

सारंगास्ते जललवमुच: सूचयिष्यन्ति मार्गम्।।

हे मेघ, जल की बूँदें बरसाते हुए तुम्हारे

जाने का जो मार्ग है, उस पर कहीं तो भौंरे

अधखिले केसरोंवाले हरे-पीले कदम्बों को

देखते हुए, कहीं हिरन कछारों में भुँई-केलियों

के पहले फुटाव की कलियों को टूँगते हुए,

और कहीं हाथी जंगलों में धरती की उठती

हुई उग्र गन्ध को सँघते हुए मार्ग की सूचना

देते मिलेंगे।

22

उत्पश्चामि द्रुतमपि सखे! मत्प्रियार्थं यियासो:

कालक्षेपं ककुभरसुरभौ पर्वते पर्वते ते।

शुक्लापांगै: सजलनयनै: स्वागतीकृत्य केका:

प्रत्युद्यात: कथमपि भववान्गन्तुमाशु व्यवस्येतु।।

हे मित्र, मेरे प्रिय कार्य के लिए तुम जल्दी

भी जाना चाहो, तो भी कुटज के फूलों से

महकती हुई चोटियों पर मुझे तुम्हारा अटकाव

दिखाई पड़ रहा है।

सफेद डोरे खिंचे हुए नेत्रों में जल

भरकर जब मोर अपनी केकावाणी से

तुम्हारा स्वागत करने लगेंगे, तब जैसे भी

हो, जल्दी जाने का प्रयत्न करना।

23

पाण्डुच्छायोपवनवृतय: केतकै: सूचिभिन्नै-

र्नीडारम्भैर्गृ हबलिभुजामाकुलग्रामचैत्या:।

त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ता:

संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णा:।।

हे मेघ, तुम निकट आए कि दशार्ण देश में

उपवनों की कटीली रौंसों पर केतकी के

पौधों की नुकीली बालों से हरियाली छा

जाएगी, घरों में आ-आकर रामग्रास खानेवाले

कौवों द्वारा घोंसले रखने से गाँवों के वृक्षों

पर चहल-पहल दिखाई देने लगेगी, और

पके फलों से काले भौंराले जामुन के वन

सुहावने लगने लगेंगे। तब हंस वहाँ कुछ ही

दिनों के मेहमान रह जाएँगे।

24

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं

गत्वा सद्य: फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।

तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-

त्सभ्रूभंगं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।।

उस देश की दिगन्तों में विख्यात विदिशा

नाम की राजधानी में पहुँचने पर तुम्हें अपने

रसिकपने का फल तुरन्त मिलेगा - वहाँ तट

के पास मठारते हुए तुम वेत्रवती के तरंगित

जल का ऐसे पान करोगे जैसे उसका

भ्रू-चंचल मुख हो।

25

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-

स्त्वसंपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पै: कदम्बै:।

य: पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद~गारिभिर्नागराणा-

मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौ वनानि।।

विश्राम के लिए वहाँ 'निचले' पर्वत पर
बसेरा करना जो तुम्हारा सम्पर्क पाकर खिले
फूलोंवाले कदम्बों से पुलकित-सा लगेगा।
उसकी पथरीली कन्दराओं से उठती हुई
गणिकाओं के भोग की रत-गन्ध पुरवासियों
के उत्कट यौवन की सूचना देती है।

26

विश्रान्त: सन्ब्रज वननदीतीरजालानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यू थिकाजालकानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचित: पुष्पलावीमुखानाम्।।

विश्राम कर लेने पर, वन-नदियों के किनारों
पर लगी हुई जूही के उद्यानों में कलियों को
नए जल की बूँदों से सींचना, और जिनके
कपोलों पर कानों के कमल पसीना पोंछने
की बाधा से कुम्हला गए हैं, ऐसी फूल
चुननेवाली स्त्रियों के मुखों पर तनिक छाँह
करते हुए पुन: आगे चल पड़ना।

27

वक्र: पन्था यदपि भवत: प्रस्थितस्योत्तराशां

सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्या:।

विद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्र पौरांगनानां

लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितो•सि।।

यद्यपि उत्तर दिशा की ओर जानेवाले तुम्हें

मार्ग का घुमाव पड़ेगा, फिर भी उज्जयिनी

के महलों की ऊँची अटारियों की गोद में

बिलसने से विमुख न होना। बिजली चमकने

से चकाचौंध हुई वहाँ की नागरी स्त्रियों के

नेत्रों की चंचल चितवनों का सुख तुमने न

लूटा तो समझना कि ठगे गए।

28

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणाया:

संसर्पन्त्या: स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभे:।

निर्विन्ध्याया: पथि भव रसाभ्यन्तर: सन्निपत्य

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।

लहरों के थपेड़ों से किलकारी भरते हुए

हंसों की पंक्तिरूपी करधनी झंकारती हुई,

अटपट बहाव से चाल की मस्ती प्रकट

करती हुई, और भँवररूपी नाभि उघाड़कर

दिखाती हुई निर्विन्ध्या से मार्ग में मिलकर

उसका रस भीतर लेते हुए छकना।

प्रियतम से स्त्री की पहली प्रार्थना

श्रृंगार-चेष्टाओं द्वारा ही कही जाती है।

29

वेणीभूतप्रतनुसलिलालसावतीतस्य सिन्धु:

पाण्डुच्छाया तटरुहतरूभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णै:।

सौभाग्यं ते सुभग! विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती

कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य:।।

जिसकी पतली जलधारा वेणी बनी हुई हैं,

और तट के वृक्षों से झड़े हुए पुराने पत्तों से

जो पीली पड़ी हुई है, अपनी विरह दशा से

भी जो प्रवास में गए तुम्हारे सौभाग्य को

प्रकट करती है, हे सुभग, उस निर्विन्ध्या की

कृशता जिस उपाय से दूर हो वैसा अवश्य

करना।

30

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा-

न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्री विशालां विशालाम्।

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां

शेषै: पुण्यैर्हृतमिव दिव: कान्तिमत्खण्डमेकम्।।

गाँवों के बड़े-बूढ़े जहाँ उदयन की कथाओं
में प्रवीण हैं, उस अवन्ति देश में पहुँचकर,
पहले कही हुई विशाल वैभववाली उज्जयिनी
पुरी को जाना।
सुकर्मों के फल छीजने पर जब स्वर्ग के
प्राणी धरती पर बसने आते हैं, तब बचे हुए
पुण्य-फलों से साथ में लाया हुआ स्वर्ग का
ही जगमगाता हुआ टुकड़ा मानो उज्जयिनी
है।

31

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय:।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमंगानुकूल:
शिप्रावात: प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार:।।

जहाँ प्रात:काल शिप्रा का पवन खिले कमलों
की भीनी गन्ध से महमहाता हुआ, सारसों
की स्पष्ट मधुर बोली में चटकारी भरता
हुआ, अंगों को सुखद स्पर्श देकर, प्रार्थना
के चटोरे प्रियतम की भाँति स्त्रियों के
रतिजनित खेद को दूर करता है।

32

जालोद्गीर्णैरुपचितवपु: केशसंस्कारधूपै-

र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहार:।

हर्म्येष्वस्या: कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा

लक्ष्मीं पश्यंल्ललितवनितापादरागाद्दितेषु।।

उज्जयिनी में स्त्रियों के केश सुवासित करनेवाली धूप गवाक्ष जालों से बाहर उठती हुई तुम्हारे गात्र को पुष्ट करेगी, और घरों के पालतू मोर भाईचारे के प्रेम से तुम्हें नृत्य का उपहार भेंट करेंगे। वहाँ फूलों से सुरभित महलों में सुन्दर स्त्रियों के महावर लगे चरणों की छाप देखते हुए तुम मार्ग की थकान मिटाना।

33

भर्तु: कण्ठच्छविरिति गणै: सादरं वीक्ष्यमाण:

पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।

धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-

स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तै र्मरुद~भि:।।

अपने स्वामी के नीले कंठ से मिलती हुई शोभा के कारण शिव के गण आदर के साथ तुम्हारी ओर देखेंगे। वहाँ त्रिभुवन-पति चंडीश्वर के पवित्र धाम में तुम जाना।

उसके उपवन के कमलों के पराग से
सुगन्धित एवं जलक्रीड़ा करती हुई युवतियों
के स्नानीय द्रव्यों से सुरभित गन्धवती की
हवाएँ झकोर रही होंगी।

34

अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानु:।
कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिन: श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम्।।

हे जलधर, यदि महाकाल के मन्दिर में
समय से पहले तुम पहुँच जाओ, तो तब
तक वहाँ ठहर जाना जब तक सूर्य आँख से
ओझल न हो जाए।
शिव की सन्ध्याकालीन आरती के
समय नगाड़े जैसी मधुर ध्वनि करते हुए
तुम्हें अपने धीर-गम्भीर गर्जनों का पूरा फल
प्राप्त होगा।

35

पादन्यासक्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरै: क्लान्तहस्ता:।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू -

नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान्।।

वहाँ प्रदोष-नृत्य के समय पैरों की ठुमकन
से जिनकी कटिकिंकिणी बज उठती है, और
रत्नों की चमक से झिलमिल मूठोंवाली
चौरियाँ डुलाने से जिनके हाथ थक जाते हैं,
ऐसी वेश्याओं के ऊपर जब तुम सावन के
बुन्दाकड़े बरसाकर उनके नखक्षतों को सुख
दोगे, तब वे भी भौंरों-सी चंचल पुतलियों से
तुम्हारे ऊपर अपने लम्बे चितवन चलाएँगी।

36

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीन:
सान्ध्यं तेज: प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधान:।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्र नागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।।

आरती के पश्चात आरम्भ होनेवाले शिव के
तांडव-नृत्य में तुम, तुरत के खिले जपा
पुष्पों की भाँति फूली हुई सन्ध्या की ललाई
लिये हुए शरीर से, वहाँ शिव के ऊँचे उठे
भुजमंडल रूपी वन-खंड को घेरकर छा जाना।
इससे एक ओर तो पशुपति शिव रक्त
से भीगा हुआ गजासुरचर्म ओढ़ने की इच्छा
से विरत होंगे, दूसरी ओर पार्वती जी उस

ग्लानि के मिट जाने से एकटक नेत्रों से

तुम्हारी भक्ति की ओर ध्यान देंगी।

37

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं

रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभि:।

सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी

तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ता:।।

वहाँ उज्जयिनी में रात के समय प्रियतम के

भवनों को जाती हुई अभिसारिकाओं को

जब घुप्प अँधेरे के कारण राज-मार्ग पर

कुछ न सूझता हो, तब कसौटी पर कसी

कंचन-रेखा की तरह चमकती हुई बिजली

से तुम उनके मार्ग में उजाला कर देना।

वृष्टि और गर्जन करते हुए, घेरना मत,

क्योंकि वे बेचारी डरपोक होती हैं।

38

तां कस्यांचिद~भवनवलभौ सुप्तपारावतायां

नीत्वा रात्रिं चिरविलसिनात्खिन्नविद्युत्कलत्र:।

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या:।।

देर तक बिलसने से जब तुम्हारी बिजली

रूपी प्रियतमा थक जाए, तो तुम वह रात्रि

किसी महल की अटारी में जहाँ कबूतर

सोते हों बिताना। फिर सूर्योदय होने पर

शेष रहा मार्ग भी तय करना। मित्रों का

प्रयोजन पूरा करने के लिए जो किसी काम

को ओढ़ लेते हैं, वे फिर उसमें ढील नहीं

करते।

39

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डिताना

शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।

प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोपि हर्तुं नलिन्या:

प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूय:।।

रात्रि में बिछोह सहनेवाली खंडिता नायिकाओं

के आँसू सूर्योदय की बेला में उनके प्रियतम

पोंछा करते हैं, इसलिए तुम शीघ्र सूर्य का

मार्ग छोड़कर हट जाना, क्योंकि सूर्य भी

कमलिनी के पंकजमुख से ओसरूपी आँसू

पोंछने के लिए लौटे होंगे। तुम्हारे द्वारा हाथ

रोके जाने पर उनका रोष बढ़ेगा।

40

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने

छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।

तस्यादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-

न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि।।

गम्भीरा के चित्तरूपी निर्मल जल में तुम्हारे

सहज सुन्दर शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ेगा ही।

फिर कहीं ऐसा न हो कि तुम उसके कमल-

से श्वेत और उछलती शफरी-से चंचल

चितवनों की ओर अपने धीरज के कारण

ध्यान न देते हुए उन्हें विफल कर दो।

41

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं

नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोघोनितम्बम्।

प्रस्थानं ते कथमपि सखे! लम्बमानस्य भावि

शातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समूर्थः।।

हे मेघ, गम्भीरा के तट से हटा हुआ नीला

जल, जिसे बेंत अपनी झुकी हुई डालों से

छूते हैं, ऐसा जान पड़ेगा मानो नितम्ब से

सरका हुआ वस्त्र उसने अपने हाथों से

पकड़ा रक्खा है।

हे मित्र, उसे सरकाकर उसके ऊपर

लम्बे-लम्बे झुके हुए तुम्हारा वहाँ से हटना
कठिन ही होगा, क्योंकि स्वाद जाननेवाला
कौन ऐसा है जो उघड़े हुए जघन भाग का
त्याग कर सके।

42

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्य:
स्त्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभि: पीयमान:।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायु: परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।।

हे मेघ, तुम्हारी झड़ी पड़ने से भपारा छोड़ती
हुई भूमि की उत्कट गन्ध के स्पर्श से जो
सुरभित है, अपनी सूँड़ों++ के नथुनों में
सुहावनी ध्वनि करते हुए हाथी जिसका पान
करते हैं, और जंगली गूलर जिसके कारण
गदरा गए हैं, ऐसा शीतल वायु देवगिरि
जाने के इच्छुक तुमको मन्द-मन्द थपकियाँ
देकर प्रेरित करेगा।

43

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेधीकृतात्मा

पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगग्ङाजलाद्रैः।

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-

मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः।।

हे मेघ, अपने शरीर को पुष्प-वर्षी बनाकर आकाशगंगा के जल में भीगे हुए फूलों की बौछारों से वहाँ देवगिरि पर सदा बसनेवाले स्कन्द को तुम स्नान कराना। नवीन चन्द्रमा मस्तक पर धारण करनेवाले भगवान शिव ने देवसेनाओं की रक्षा के लिए सूर्य से भी अधिक जिस तेज को अग्नि के मुख में क्रमशः संचित किया था, वही स्कन्द है।

44

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं, भवानी

पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।

धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूर

पश्वादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः।।

पश्चात उस पर्वत की कन्दराओं में गूँजकर फैलनेवाले अपने गर्जित शब्दों से कार्तिकेय के उस मोर को नचाना जिसकी आँखों के कोये शिव के चन्द्रमा की चाँदनी-से धवलित

हैं। उसके छोड़े हुए पैंच को, जिस पर

चमकती रेखाओं के चन्दक वने हैं, पार्वती

जी पुत्र-स्नेह के वशीभूत हो कमल पत्र की

जगह अपने कान में पहनती हैं।

45

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लाङ्विताध्वा

सिध्ददद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मु क्तमार्ग:।

व्यालम्वेथा: सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्

स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम्।।

सरकंडों के वन में जन्म लेनेवाले स्कन्द की

आराधना से निवृत होने के बाद तुम, जब

वीणा हाथ में लिये हुए सिद्ध दम्पति बूँदों

के डर से मार्ग छोड़कर हट जाएँ, तब आगे

बढ़ना, और चर्मण्वती नदी के प्रति सम्मान

प्रकट करने के लिए नीचे उतरना। गोमेघ

से उत्पन्न हुई राजा रन्तिदेव की कीर्ति ही

उस जलधारा के रूप में पृथ्वी पर बह

निकली है।

46

त्वय्यांदातुं जलमवनते शर्ङिणो वर्णचौरे

तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-

रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्।।

हे मेघ, विष्णु के समान श्यामवर्श तुम जब

चर्मण्वती का जल पीने के लिए झुकोगे,

तब उसके चौड़े प्रवाह को, जो दूर से पतला

दिखाई पड़ता है, आकाशचारी सिद्ध-गन्धर्व

एकटक दृष्टि से निश्चय देखने लगेंगे मानो

पृथ्वी के वक्ष पर मोतियों का हार हो

जिसके बीच में इन्द्र नील का मोटा मनका

पिरोया गया है।

47

तामुत्तीर्यं ब्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्।

कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं

पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतुहलनाम्।।

उस नदी को पार करके अपने शरीर को

दशपुर की स्त्रियों के नेत्रों की लालसा का

पात्र बनाते हुए आगे जाना। भौंहें चलाने में

अभ्यस्त उनके नेत्र जब बरौनी ऊपर उठती

है तब श्वेत और श्याम प्रभा के बाहर

छिटकने से ऐसे लगते हैं, मानो वायु से

हिलते हुए कुन्द पुष्पों के पीछे जानेवाले

भौंरों की शोभा उन्होंने चुरा ली हो।

48

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमान:

क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुन कौरवं तद्भजेथा:।

राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा

धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि।।

उसके बाद ब्रह्मावर्त जनपद के ऊपर अपनी

परछाईं डालते हुए क्षत्रियों के विनाश की

सूचक कुरुक्षेत्र की उस भूमि में जाना जहाँ

गांडीवधारी अर्जुन ने अपने चोखे बाणों की

वर्षा से राजाओं के मुखों पर ऐसी झड़ी

लगा दी थी जैसी तुम मूसलाधार मेह

बरसाकर कमलों के ऊपर करते हो।

49

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्का

बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाग्ड़ली या: सिषेवे।

कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य! सारस्वतीना-

मन्त: शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्ण:।।

कौरवों और पांडवों के प्रति समान स्नेह के

कारण युध्द से मुँह मोड़कर बलराम जी

मन-चाहते स्वादवाली उस हाला को, जिसे

रेवती अपने नेत्रों की परछाईं डालकर स्वयं

पिलाती थीं, छोड़कर सरस्वती के जिन जलों

का सेवन करने के लिए चले गए थे, तुम

भी जब उनका पान करोगे, तो अन्त:करण

से शुद्‌ध बन जाओगे, केवल बाहरी रंग ही

साँवला दिखाई देगा।

50

तस्माद्‌गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णा

जह्नो: कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्‌क्तिम्।

गौरीवक्त्रभृकुटिरचनां या विहस्येव फेनै:

शंभो: केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता।।

वहाँ से आगे कनखल में शैलराज हिमवन्त

से नीचे उतरती हुई गंगा जी के समीप

जाना, जो सगर के पुत्रों का उद्‌धार करने के

लिए स्वर्ग तक लगी हुई सीढ़ी की भाँति

हैं। पार्वती के भौंहें ताने हुए मुँह की ओर

अपने फेनों की मुसकान फेंककर वे गंगा

जी अपने तरंगरूपी हाथों से चन्द्रमा के

साथ अठखेलियाँ करती हुई शिव के केश

पकड़े हुए हैं।

51

तस्या: पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्थलम्बी

त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भ:।

संसर्पन्त्या सपदि भवत: स्त्रोतसि च्छायसासौ

स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा।।

आकाश में दिशाओं के हाथी की भाँति

पिछले भाग से लटकते हुए जब तुम आगे

की ओर झुककर गंगा जी के स्वच्छ बिल्लौर

जैसे निर्मल जल को पीना चाहोगे, तो प्रवाह

में पड़ती हुई तुम्हारी छाया से वह धारा

ऐसी सुहावनी लगेगी जैसे प्रयाग से अन्यत्र

यमुना उसमें आ मिली हो।

52

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां

तस्या एवं प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारै:।

वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य श्रृंगे निषण्ण:

शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्।।

वहाँ आकर बैठनेवाले कस्तूरी मृगों के नाफे

की गन्ध से जिसकी शिलाएँ महकती हैं,

उस हिम-धवलित पर्वत पर पहुँचकर जब
तुम उसकी चोटी पर मार्ग की थकावट
मिटाने के लिए बैठोगे, तब तुम्हारी शोभा
ऐसी जान पड़ेगी मानो शिव के गोरे नन्दी
ने गीली मिट्टी खोदकर सींगों पर उछाल
ली हो।

53

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शतयितुलं वारिधारासहस्त्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः संपदो ह्युत्तमानाम्।।

जंगली हवा चलने पर देवदारु के तनों की
रगड़ से उत्पन्न दावाग्नि, जिसकी चिनगारियों
से चौंरी गायों की पूँछ के बाल झुलस जाते
हैं, यदि उस पर्वत को जला रही हो, तो तुम
अपनी असंख्य जल-धाराओं से उसे शान्त
करना। श्रेष्ठ पुरुषों की सम्पत्ति का यही
फल है कि दुःखी प्राणियों के दुःख उससे
दूर हों।

54

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मि-

न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम्।

तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्

के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः।।

यदि वहाँ हिमालय में कुपित होकर वेग से

उछलते हुए शरथ मृग, उनके मार्ग से अलग

विचरनेवाले तुम्हारी ओर, सपाटे से कूदकर

अपना अंग-भंग करने पर उतारू हों, तो

तुम भी तड़ातड़ ओले बरसाकर उन्हें दल

देना। व्यर्थ के कामों में हाथ डालनेवाला

कौन ऐसा है जो नीचा नहीं देखता?

55

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः

शश्वत्सिद्धैरूपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।

यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धृतपापाः

संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः।।

वहाँ चट्टान पर शिवजी के पैरों की छाप

बनी है। सिद्ध लोग सदा उस पर पूजा की

सामग्री चढ़ाते हैं। तुम भी भक्ति से

झुककर उसकी प्रदक्षिणा करना। उसके

दर्शन से पाप के कट जाने पर श्रद्धावान

लोग शरीर त्यागने के बाद सदा के लिए

गणों का पद प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

56

शब्दायन्ते मधुरमनिलै: कीचका: पूर्यमाणा:

संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयतो किन्नरीभि:।

निर्हादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनि: स्या-

त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्र:।।

वहाँ पर हवाओं के भरने से सूखे बाँस

बजते हैं और किन्नरियाँ उनके साथ कंठ

मिलाकर शिव की त्रिपुर-विजय के गान

गाती हैं। यदि कन्दराओं में गूँजता हुआ

तुम्हारा गर्जन मृदंग के निकलती हुई ध्वनि

की तरह उसमें मिल गया, तो शिव की

पूजा के संगीत का पूरा ठाट जम जाएगा।

57

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्

हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।

तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी

श्याम: पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णो:।।

हिमालय के बाहरी अंचल में उन-उन दृश्यों

को देखते हुए तुम आगे बढ़ना। वहाँ क्रौंच
पर्वत में हंसों के आवागमन का द्वार वह
रन्ध्र है जिसे परशुराम ने पहाड़ फोड़कर
बनाया था। वह उनके यश का स्मृति-चिह्न
है। उसके भीतर कुछ झुककर लम्बे प्रवेश
करते हुए तुम ऐसे लगोगे जैसे बलि-बन्धन
के समय उठा हुआ त्रिविक्रम विष्णु का
साँवला चरण सुशोभित हुआ था।

58

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधे:
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि: स्या:।
श्रृङ्गोच्छ्रायै: कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थित: खं
राशीभूत: प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहास:।।

वहाँ से आगे बढ़कर कैलास पर्वत के
अतिथि होना जो अपनी शुभ्रता के कारण
देवांगणनाओं के लिए दर्पण के समान है।
उसकी धारों के जोड़ रावण की भुजाओं से
झड़झड़ाए जाने के कारण ढीले पड़ गए हैं।
वह कुमुद के पुष्प जैसी श्वेत बर्फीली
चोटियों की ऊँचाई से आकाश को छाए
हुए ऐसे खड़ा है मानो शिव के प्रतिदिन के
अट्टहास का ढेर लग गया है।

59

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निगधभिन्नाञ्जनाभे

सद्य:कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य।

शोभामद्रे: स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव।।

हे मेघ, चिकने घुटे हुए अंजन की शोभा से

युक्त तुम जब उस कैलास पर्वत के ढाल

पर घिर आओगे, जो हाथी दाँत के तुरन्त

कटे हुए टुकड़े की तरह धवल है, तो

तुम्हारी शोभा आँखों से ऐसी एकटक देखने

योग्य होगी मानो कन्धे पर नीला वस्त्र डाले

हुए गोरे बलराम हों।

60

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता

क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी।

भङ्गीभक्त्या विरचितवपु: स्तम्भितान्तर्जलौघ:

सोपानत्वं कुरू मणितटारोहणायाग्रयायी।।

जिस पर लिपटा हुआ सर्परूपी कंगन उतारकर

रख दिया गया है, शिव के ऐसे हाथ में

अपना हाथ दिए यदि पार्वती जी उस क्रीड़ा

पर्वत पर पैदल घूमती हों, तो तुम उनके

आगे जाकर अपने जलों को भीतर ही बर्फ
रूप में रोके हुए अपने शरीर से नीचे-ऊँचे
खंड सजाकर सोपान बना देना जिससे वे
तुम्हारे ऊपर पैर रखकर मणितट पर आरोहण
कर सकें।

61

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्धट्टनोदगीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो भोक्षस्तव यदि सखे! धर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोला: श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ता:।।

वहाँ कैलास पर सुर-युवतियाँ जड़ाऊ कंगन
में लगे हुए हीरों की चोट से बर्फ के बाहरी
आवरण को छेदकर जल की फुहारें उत्पन्न
करके तुम्हारा फुहारा बना लेंगी। हे सखे,
धूप में तुम्हारे साथ जल-क्रीड़ा में निरत
उनसे यदि शीघ्र न छूट सको तो अपने
गर्णभेदी गर्जन से उन्हें डरपा देना।

62

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददान:
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-

नानाचेष्टैर्जलद! ललितैर्निर्विशे तं नगेन्द्रम्।।

हे मेघ, अपने मित्र कैलास पर नाना भाँति की ललित क्रीड़ाओं से मन बहलाना। कभी सुनहरे कमलों से भरा हुआ मानसरोवर का जल पीना; कभी इन्द्र के अनुचर अपने सखा ऐरावत के मुँह पर क्षण-भर के लिए कपड़ा-सा झाँपकर उसे प्रसन्न करना; और कभी कल्पवृक्ष के पत्तों को अपनी हवाओं से ऐसे झकझोरना जैसे हाथों में रेशमी महीन दुपट्टा लेकर नृत्य के समय करते हैं।

63

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रोतङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारीन्!
या व: काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।।

हे कामचारी मेघ, जिसकी गंगारूपी साड़ी सरक गई है ऐसी उस अलका को प्रेमी कैलास की गोद में बैठी देखकर तुम न पहचान सको, ऐसा नहीं हो सकता। बरसात के दिनों में उसके ऊँचे महलों पर जब तुम छा जाओगे तब तुम्हारे जल की झड़ी से वह

ऐसी सुहावनी लगेगी जैसी मोतियों के जालों से गुँथे हुए घुँघराले केशोंवाली कोई कामिनी हो।

उत्तरमेघ

1

विद्युत्वन्तं ललितवनिता: सेन्द्रचापं सचित्रा:

संगीताय प्रहतमुरजा: स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्मभ्रंलिहाग्रा:

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषै:।।

अलका के महल अपने इन-इन गुणों से तुम्हारी होड़ करेंगे। तुम्हारे पास बिजली है तो उनमें छबीली स्त्रियाँ हैं। तुम्हारे पास रँगीला इन्द्रधनुष है तो उनमें चित्र लिखे हैं। तुम्हारे पास मधुर गम्भीर गर्जन है तो उनमें संगीत के लिए मृदंग ठनकते हैं। तुम्हारे भीतर जल भरा हैं, तो उनमें मणियों से बने चमकीले फर्श हैं। तुम आकाश में ऊँचे उठे हो तो वे गगनचुम्बी हैं।

2

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री:।

चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीष:

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।

वहाँ अलका की वधुएँ षड्ऋतुओं के फूलों से अपना श्रृंगार करती हैं। शरद में कमल उनके हाथों के लीलारविन्द हैं। हेमन्त में टटके बालकुन्द उनके घुँघराले बालों में गूँथे जाते हैं। शिशिर में लोध्र पुष्पों का पीला पराग वे मुख की शोभा के लिए लगाती हैं। वसन्त में कुरबक के नए फूलों से अपना जूड़ा सजाती हैं। गरमी में सिरस के सुन्दर फूलों को कान में पिरोती हैं और तुम्हारे पहँचने पर वर्षा में जो कदम्ब पुष्प खिलते हैं, उन्हें माँग में सजाती हैं।

3

यस्यां यक्षा: सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि

ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहाया:।

आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं

त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकै: पुष्करेष्वाहतेषु।।

वहाँ पत्थर के बने हुए महलों के उन अट्टों

पर जिनमें तारों की परछाईं फूलों-सी झिलमिल

होती है, यक्ष ललितांगनाओं के साथ विराजते

हैं। तुम्हारे जैसी गम्भीर ध्वनिवाले पुष्कर

वाद्य जब मन्द-मन्द बजते हैं, तब वे दम्पति

कल्प वृक्ष से इच्छानुसार प्राप्त रतिफल

नामक मधु का पान करते हैं।

4

मन्दाकिन्या: सलिलशिशरै: सेव्यमाना मरुदभि-

र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णा:।

अन्वेष्टव्यै: कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढै:

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या:।।

देवता जिन्हें चाहते हैं, ऐसी रूपवती कन्याएँ

अलका में मन्दाकिनी के जल से शीतल

बनी पवनों का सेवन करती हुई, और नदी

किनारे के मन्दारों की छाया में अपने आपको

धूप से बचाती हुई, सुनहरी बालू की मूठें

मारकर मणियों को पहले छिपा देती हैं और

फिर उन्हें ढूँढ़ निकालने का खेल खेलती

हैं।

5

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधाराणां

क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।

अर्चिस्तुङ्गानाभिमुखमपि प्राप्तरत्नप्रदीपान्

ह्नीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टि:।।

वहाँ अलका में कामी प्रियतम अपने चंचल

हाथों से लाल अधरोंवाली स्त्रियों के नीवी

बन्धनों के तड़क जाने से ढीले पड़े हुए

दुकूलों को जब खींचने लगते हैं, तो लज्जा

में बूड़ी हुई वे बेचारी किरणें छिटकाते हुए

रत्नीदीपों को सामने रखे होने पर भी कुंकुम

की मूठी से बुझाने में सफल नहीं होतीं।

6

नेत्रा नीता: सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-

रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्यासद्य:।

शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै-

र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति।।

उस अलका के सतखंडे महलों की ऊँची

अटारियों में बेरोकटोक जानेवाले वायु की

प्रेरणा में प्रवेश पाकर तुम्हारे जैसे मेहवाले

बादल अपने नए जल-कणों से भित्तिचित्रों

को बिगाड़कर अपराधी की भाँति डरे हुए,

झरोखों से धुएँ की तरह निकल भागने में

चालाक, जर्जर होकर बाहर आते हैं।

7

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासिताना-

मङ्गग्लानि सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बा:।

त्वत्संरोधापगमविशपैश्चन्द्रपादैनिशीथे

व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ता:।।

वहाँ अलका में आधी रात के समय जब

तुम बीच में नहीं होते तब चन्द्रमा की

निर्मल किरणें झालरों में लटकी हुई चन्द्रकान्त

मणियों पर पड़ती हैं, जिससे वे भी जल-

बिन्दुओं की फुहार चुआने लगती हैं और

प्रियतमों के गाढ़ भुजालिंगन से शिथिल हुई

कामिनियों के अंगों की रतिजनित थकान

को मिटाती हैं।

8

अक्षय्यान्तर्भवननिधय: प्रत्यहं रक्तकण्ठै-

रूद्गायद्भिर्धनपतियश: किंनरैर्यत्र सार्धम्।

वैभ्राजाख्यं बिबुधवनितावारमुख्यासहाया

बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति।।

वहाँ अलका में कामी जन अपने महलों के

भीतर अखूट धनराशि रखे हुए सुरसुन्दरी

वारांगनाओं से प्रेमालाप में मग्न होकर

प्रतिदिन, सुरीले कंठ से कुबेर का यश

गानेवाले किन्नरों के साथ, चित्ररथ नामक

बाहरी उद्यान में विहार करते हैं।

9

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पै:

पत्रच्छेदै: कनककमलै: कर्णविभ्रंशिभिश्च।

मुक्ताजालै: स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-

र्नैशोमार्ग: सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।।

वहाँ अलका में प्रात: सूर्योदय के समय

कामिनियों के रात में अभिसार करने का

मार्ग चाल की दलक के कारण घुँघराले

केशों से सरके हुए मन्दार फूलों से, कानों

से गिरे हुए सुनहरे कमलों के पत्तेदार

झुमकों से, बालों में गुँथे मोतियों के बिखेरे

हुए जालों से, और उरोजों पर लटकनेवाले

हारों के टूटकर गिर जाने से पहचाना जाता

है।

10

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं

प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथ: षट्पदज्यम्।

सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-

स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः।।

वहाँ अलका में कुबेर के मित्र शिवजी को

साक्षात बसता हुआ जानकर कामदेव भौंरों

की प्रत्यंचावाले अपने धनुष पर बाण चढ़ाने

से प्रायः डरता है।

कामीजनों को जीतने का उसका मनोरथ

तो नागरी स्त्रियों की लीलाओं से ही पूरा

हो जाता है, जब वे भौंहें तिरछी करके

अपने कटाक्ष छोड़ती हैं जो कामीजनों में

अचूक निशाने पर बैठते हैं।

11

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं

पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।

लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-

मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः।।

वहाँ अलका में पहनने के लिए रंगीन वस्त्र,

नयनों में चंचलता लाने के लिए चटक मधु,

शरीर सजाने के लिए पुष्प-किसलय और

भाँति-भाँति के गहने, चरणकमल रँगने के

लिए महावर - यह सब स्त्रियों की श्रृंगार-

सामग्री अकेला कल्पवृक्ष ही उत्पन्न कर

देता है।

12

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं

दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।

यस्योपान्ते कृतकतनय: कान्तया वर्धितो मे

हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्ष:।।

उस अलका में कुबेर के भवन से उत्तर की

ओर मेरा घर है, जो सुन्दर इन्द्रधनुष के

समान तोरण से दूर से पहचाना जाता है।

उस घर के एक ओर मन्दार का बाल वृक्ष

है जिसे मेरी पत्नी ने पुत्र की तरह पोसा है

और जो हाथ बढ़ाकर चुन लेने योग्य फूलों

के गुच्छों से झुका हुआ है।

13

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा

हैमैश्छन्न विकचकमलै: स्निग्धवैदूर्यनालै:।

यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं

नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसा।।

मेरे उस घर में एक बावड़ी हैं, जिसमें

उतरने की सीढ़ियों पर पन्ने की सिलें जड़ी

हैं और जिसमें बिल्लौर की चिकनी नालोंवाले

खिले हुए सोने के कमल भरे हैं। सब दु:ख

भुलाकर उसके जल में बसे हुए हंस तुम्हारे

आ जाने पर भी पास में सुगम मानसरोवर

में जाने की उत्कंठा नहीं दिखाते।

14

तस्यास्तीरे रचितशिखर: पेशलैरिन्द्रनीलै:

क्रीडाशैल: कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीय:।

मद्गोहिन्या: प्रिय इति सखे! चेतसा कातरेण

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि।।

उस बावड़ी के किनारे एक क्रीड़ा-पर्वत है।

उसकी चोटी सुन्दर इन्द्र नील मणियों के

जड़ाव से बनी है; उसके चारों ओर सुनहले

कदली वृक्षों का कटहरा देखने योग्य है।

हे मित्र, चारों ओर घिरकर बिजली

चमकाते हुए तुम्हें देखकर डरा हुआ मेरा

मन अपनी गृहिणी के प्यारे उस पर्वत को

ही याद करने लगता है।

15

रक्ताशोकश्चलकिसलय: केसरश्चात्र कान्त:

प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।

एक: सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी

काङ्क्षत्वन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्या:।।

उस क्रीड़ा-शैल में कुबरक की बाढ़ से घिरा

हुआ मोतिये का मंडप है, जिसके पास एक

ओर चंचल पल्लवोंवाला लाल फूलों का

अशोक है और दूसरी ओर सुन्दर मौलसिरी

है। उनमें से पहला मेरी तरह की दोहद के

बहाने तुम्हारी सखी के बाएँ पैर का आघात

चाहता है, और दूसरा (बकुल) उसके मुख

से मदिरा की फुहार का इच्छुक है।

16

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-

र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशै:।

तालै: शिन्जावलयसुभगैर्नर्तित: कान्तया मे

यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठ: सुहृद्व:।।

उन दो वृक्षों के बीच में सोने की बनी हुई

बसेरा लेने की छतरी है जिसके सिरे पर

बिल्लौर का फलक लगा है, और मूल में

नए बाँस के समान हरे चोआ रंग की

मरकत मणियाँ जड़ी हैं।

मेरी प्रियतमा हाथों में बजते कंगन

पहले हुए सुन्दर ताल दे-देकर जिसे नचाती

है, वह तुम्हारा प्रियसखा नीले कंठवाला मोर

सन्ध्या के समय उस छतरी पर बैठता है।

17

एभि: साधो! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा।

क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।।

हे चतुर, ऊपर बताए हुए इन लक्षणों को

हृदय में रखकर, तथा द्वार के शाखा-स्तम्भों

पर बनी हुई शंख और कमल की आकृति

देखकर तुम मेरे घर को पहचान लोगे,

यद्यपि इस समय मेरे वियोग में वह अवश्य

छविहीन पड़ा होगा।

सूर्य के अभाव में कमल कभी अपनी

पूरी शोभा नहीं दिखा पाता।

18

गत्वा सद्य: कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतो:

क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णा:।

अर्हस्यन्तर्भभवनपतितां कर्तुमल्पाल्यभासं

खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्।।

हे मेघ, सपाटे के साथ नीचे उतरने के लिए

तुम शीघ्र ही मकुने हाथी के समान रूप

बनाकर ऊपर कहे हुए क्रीड़ा-पर्वत के

सुन्दर शिखर पर बैठना। फिर जुगनुओं की

भाँति लौकती हुई, और टिमटिमाते

प्रकाशवाली अपनी बिजलीरूपी दृष्टि महल

के भीतर डालना।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी

मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभि:।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु:।।

देह की छरहरी, उठते हुए यौवनवाली,

नुकीले दाँतोंवाली, पके कुंदरू-से लाल

अधरवाली, कटि की क्षीण, चकित हिरनी

की चितवनवाली, गहरी नाभिवाली श्रोणि-भार

से चलने में अलसाती हुई, स्तनों के भार से

कुछ झुकी हुई - ऐसी मेरी पत्नी वहाँ अलका

की युवतियों में मानो ब्रह्मा की पहली कृति

है।

तां जानीथा: परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं

दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमवैकाम्।

गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छन्सु बालां

जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।।

मेरे दूर चले आने के कारण अपने साथी से

बिछड़ी हुई उस प्रियतमा को तुम मेरा दूसरा

प्राण ही समझो। मुझे लगता है कि विरह

की गाढ़ी वेदना से सताई हुई वह बाला

वियोग के कारण बोझल बने इन दिनों में

कुछ ऐसी हो गई होगी जैसे पाले की मारी

कमलिनी और तरह की हो जाती है।

21

नूनं तस्या: प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया

नि:श्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।

हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-

दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति।

लगातार रोने से जिसके नेत्र सूज गए हैं,

गर्म साँसों से जिसके निचले होंठ का रंग

फीका पड़ गया है, ऐसी उस प्रियतमा का

हथेली पर रखा हुआ मुख, जो श्रृंगार के

अभाव में केशों के लटक आने से पूरा न

दीखता होगा, ऐसा मलिन ज्ञात होगा जैसे

तुम्हारे द्वारा ढक जाने पर चन्द्रमा कान्तिहीन

हो जाता है।

22

आलोके ते निपतति पुरा सा वलिव्याकुला वा

मत्सादृश्य विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां

कच्चिद्भर्तु: स्मरसि रसिके! त्वं हि तस्य प्रियेति।।

हे मेघ, वह मेरी पत्नी या तो देवताओं की

पूजा में लगी हुई दिखाई पड़ेगी, या विरह में

क्षीण मेरी आकृति का अपने मनोभावों के

अनुसार चित्र लिखती होगी, या पिंजड़े की

मैना से मीठे स्वर में पूछती होगी - 'ओ

रसिया, तुझे भी क्या वे स्वामी याद आते

हैं? तू तो उनकी दुलारी थी।'

23

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य! निक्षिप्य वीणां

मद्गोत्राङ्क विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलै: सारयित्वा कथंचि-

द्भूयोभूय: स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती।।

हे सौम्य, फिर मलिन वस्त्र पहने हुए गोद में

वीणा रखकर नेत्रों के जल से भीगे हुए

तन्तुओं को किसी तरह ठीक-ठाक करके

मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से

संगीत में प्रवृत्त वह अपनी बनाई हुई स्वर-

विधि को भी भूलती हुई दिखाई पड़ेगी।

24

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा

विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।

मत्सङ्ड्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती

प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदा:।।

वियोगिनी की काम दशा, संकल्प -

अथवा, एक वर्ष के लिए निश्चित मेरे

वियोग की अवधि के कितने मास अब शेष

बचे हैं, इसकी गिनती के लिए देहली पर

चढ़ाए पूजा के फूलों को उठा-उठाकर भूमि

पर रख रही होगी। या फिर भाँति-भाँति के

रति सुखों को मन में सोचती हुई मेरे मिलने

का रस चखती होगी।

प्राय: स्वामी के विरह में वियोगिनी

स्त्रियाँ इसी प्रकार अपना मन-बहलाव किया

करती हैं।

25

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोग:

शङ्केरात्रौ गुरुतरशचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्संदेशै: सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे

तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थ:।।

चित्र-लेखन या वीणा बजाने आदि में व्यस्त

उसे दिन में तो मेरा वियोग वैसा न

सताएगा, पर मैं सोचता हूँ कि रात में मन-

बहलाव के साधन न रहने से वह तेरी सखी

भरी शोक में डूब जाएगी।

अतएव आधी रात के समय जब वह

भूमि पर सोने का व्रत लिये हुए उचटी नींद

से लेटी हो, तब मेरे सन्देश में उस पतिव्रता

को भरपूर सुख देने के लिए तुम महल की

गोख में बैठकर उसके दर्शन करना।

26

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशो:।

नीता रात्रि: क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्।।

मानसिक सन्ताप के कारण तन-क्षीण बनी

हुई वह उस विरह-शय्या पर एक करवट से

लेटी होगी, मानो प्राची दिशा के क्षितिज पर

चंद्रमा की केवल एक कोर बची हो।

जो रात्रि किसी समय मेरे साथ मनचाहा

विलास करते हुए एक क्षण-सी बीत जाती

थी, वही विरह में पहाड़ बनी हुई गर्म-गर्म

आँसुओं के साथ किसी-किसी तरह बीतती

होगी।

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्

पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।

चक्षु: खेदात्सलिलगुरुभि: पक्ष्मभिश्छादयन्तीं

साभ्रे ह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां सुप्ताम्।।

जाली में से भीतर आती हुई चन्द्रमा की

किरणों को परिचित स्नेह से देखने के लिए

उसके नेत्र बढ़ते हैं, पर तत्काल लौट आते

हैं। तब वह उन्हें आँसुओं से भरी हुई दूभर

पलकों से ऐसे ढक लेती हैं, जैसे धूप में

खिलनेवाली भू-कमलिनी मेह-बूँदी के दिन

न पूरी तरह खिल सकती है, न कुम्हलाती

ही है।

नि:श्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं

शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।

मत्संभोग: कथमुपनयेत्स्वप्नजो•पीति निद्रा-

माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरूद्धात्वकाशाम्।।

रूखे स्नान के कारण खुरखुरी एक घुँघराली

लट अवश्य उसके गाल तक लटक आई

होगी। अधर पल्लव को झुलसानेवाली

गर्म-गर्म साँस का झोंका उसे हटा रहा

होगा। किसी प्रकार स्वप्न में ही मेरे साथ

रमण का सुख मिल जाए, इसलिए वह नींद

की चाह करती होगी। पर हा! आँखों में

आँसुओं के उमड़ने से नेत्रों में नींद की

जगह भी वहाँ रुँध गई होगी।

29

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा

शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोंद्वेष्टनीयाम्।।

स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं

गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण।।

विरह के पहले दिन जो वेणी चुटीलने के

बिना मैं बाँध आया था और शाप के अन्त

में शोकरहित होने पर मैं ही जिसे जाकर

खोलूँगा, उस खुरखुरी, बेडौल और एक में

लिपटी हुई चोटी को, जो छूने मात्र से पीड़ा

पहुँचाती होगी, वह अपने कोमल गंडस्थल

के पास लम्बे नखोंवाला हाथ ले जाकर बार-

बार हटाती हुई दिखाई पड़ेगी।

30

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दु:खदु:खेन गात्रम्।

त्वामप्यस्त्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्राय: सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तिरात्मा।।

वह अबला आभूषण त्यागे हुए अपने

सुकुमार शरीर को भाँति-भाँति के दुखों से

विरह-शय्या पर तड़पते हुए किसी प्रकार

रख रही होगी। उसे देखकर तुम्हारे नेत्रों से

भी अवश्य नई-नई बूँदों के आँसू बरसेंगे।

मृदु हृदयवाले व्यक्तियों की चित्त-वृत्ति प्राय:

करुणा से भरी होती है।

31

जाने सख्यास्तव मयि मन: संभृतस्नेहमत्मा-

दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।

वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभाव: करोति

प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत्।।

मैं जानता हूँ कि तुम्हारी उस सखी के मन

में मेरे लिए कितना स्नेह है। इसी कारण

अपने पहले बिछोह में उसकी ऐसी दुखित

अवस्था की कल्पना मुझे ही रही है।

पत्नी के सुहाग से कुछ अपने को

बड़भागी मानकर मैं ये बातें नहीं बघार

रहा। हे भाई, मैंने जो कहा है, उसे तुम

स्वयं ही शीघ्र देख लोगे।

32

रुध्दापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं

प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम्।

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या

मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति।।

मुँह पर लटक आनेवाले बाल जिसकी

तिरछी चितवन रोकते हैं, काजल की चिकनाई

के बिना जो सूना है, और वियोग में

मधुपान त्याग देने से जिसकी भौंहें अपनी

चंचलता भूल चुकी हैं, ऐसा उस मृगनयनी

का बायाँ नेत्र कुशल सन्देश लेकर तुम्हारे

पहुँचने पर ऊपर की ओर फड़कता हुआ

ऐसा प्रतीत होगा जैसे सरोवर में मछली के

फड़फड़ाने से हिलता हुआ नील कमल

शोभा पाता है।

33

वामश्चास्या: कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-

र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।

संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां

यास्यत्यूरु: सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम्।।

और भी, रस-भरे केले के खम्भे के रंग-सा गोरा उसका बायाँ उरु-भाग तुम्हारे आने से चंचल हो उठेगा। किसी समय सम्भोग के अन्त में मैं अपने हाथों से उसका संवाहन किया करता था। पर आज तो न उसमें मेरे द्वारा किए हुए नख-क्षतों के चिह्न हैं, और न विधाता ने उसके चिर-परिचित मोतियों से गूँथे हुए जालों के अलंकार ही रहने दिए हैं।

34

तस्मिन्काले जलद! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-

दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।

मा भूदस्या: प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचित्

सद्य: कण्ठच्युत्भुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम्।।

हे मेघ, यदि उस समय वह नींद का सुख ले
रही हो, तो उसके पास ठहरकर गर्जन से
मुँह मोड़े हुए एक पहर तक बाट अवश्य
देखना। ऐसा न हो कि कठिनाई से स्वप्न
में मिले हुए अपने प्रियतम के साथ गाढ़े
आलिंगन के लिए कंठ में डाला हुआ
उसका बाहु-पाश अचानक खुल जाए।

35

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वास्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
विद्युद्गर्भ: स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीर: स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथा:।।

हे मेघ, फुहार, उड़ाती हुई ठंडी वायु से उसे
जगाओगे तो मालती की नई कलियों की
तरह वह खिल उठेगी। तब गवाक्ष में बैठे
हुए तुम्हारी ओर विस्मय-भरे नेत्रों से एकटक
देखती हुई उस मानिनी से, बिजली को
अपने भीतर ही छिपाकर धीर भाव से
घोरते हुए कुछ कहना आरम्भ करना।

36

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे! विद्धि मामम्बुवाहं

तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां

मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि।।

हे सुहागिनी, मैं तुम्हारे स्वामी का सखा मेघ

हूँ। उसके हृदय में भरे हुए सन्देशों को

लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। मैं अपने

धीर-गम्भीर स्वरों से मार्ग में टिके हुए

प्रवासी पतियों को शीघ्र घर लौटने के लिए

प्रेरित करता हूँ, जिससे वे अपनी विरहिणी

स्त्रियों की बँधी हुई वेणी खोलने की उमंग

पूरी कर सकें।

37

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा

त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम्।

श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य! सीमन्तिनीनां

कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात्किंचिदूनः।।

जब तुम इतना कह चुकोगे, तब वह

हनुमान को सामने पाने से सीता की भाँति

उत्सुक होकर खिले हुए चित्त से तुम्हारी

ओर मुँह उठाकर देखेगी और स्वागत

करेगी।

फिर वह सन्देश सुनने के लिए सर्वथा

एकाग्र हो जाएगी। हे सौम्य, विरहिणी

बालाओं के पास प्रियतम का जो सन्देश

स्वामी के मित्र द्वारा पहुँचता है, वह पति के

साक्षात मिलन से कुछ ही कम सुखकारी

होता होगा।

38

तामायुष्मन्! मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं

ब्रूयादेवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थ:।

अव्यापन्न: कुशलमबले! पृच्छति त्वां वियुक्त:

पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव।।

चिरजीवी मित्र, मेरे कहने से और अपनी

परोपकार-भावना से तुम इस प्रकार उससे

कहना - हे सुकुमारी, रामगिरि के आश्रमों में

गया हुआ तुम्हारा वह साथी अभी जीवित

है। तुम्हारे वियोग की व्यथा में वह पूछ रहा

हैं कि तुम कुशल से तो हो। जहाँ प्रतिपल

विपत्ति प्राणियों के निकट है वहाँ सबसे

पहले पूछने की बात भी यही है।

39

अङ्गेनाङ्गे प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं

सास्त्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।

उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती

संकल्पैस्तैर्विशति विधिया वैरिणा रुद्धमार्ग:।।

दूर गया हुआ तुम्हारा वह सहचर अपने शरीर
को तुम्हारे शरीर से मिलाकर एक करना
चाहता है, किन्तु बैरी विधाता ने उसके लौटने
का मार्ग रूँध रखा है, अतएवं वह उन-उन
संकल्पों द्वारा ही तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रहा है।
वह क्षीण है, तुम भी क्षीण हो गई हो।
वह गाढ़ी विरह-ज्वाला में तप्त है, तुम भी
विरह में जल रही हो। वह आँसुओं से भरा है,
तुम भी आँसुओं से गल रही हो। वह वेदना
से युक्त है, तुम भी निरन्तर वेदना सह रही
हो। वह लम्बी उसाँसें ले रहा है, तुम भी तीव्र
उच्छ्वास छोड़ रही हो।

40

शब्दाख्येयं यदपि किल ते य: सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णे लोल: कथयितुमभूदाननस्पर्श लोभात्।
सोतिक्रान्त: श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृष्ट-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह।।

सखियों के सामने भी जो बात मुख से
सुनाकर कहने योग्य थी, उसे तुम्हारे मुख-स्पर्श
का लोभी वह कान के पास अपना मुँह
लगाकर कहने के लिए चंचल रहता था।

ऐसा वह रसिक प्रियतम, जो इस समय

आँख और कान की पहुँच से बाहर है,

उत्कंठावश सन्देश के कुछ अक्षर जोड़कर

मेरे द्वारा तुमसे कह रहा है।

41

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं

वक्त्रच्छायांशशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्

हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति।।

हे प्रिये, प्रियंगु लता में तुम्हारे शरीर, चकित

हिरनियों के नेत्रों में कटाक्ष, चन्द्रमा में मुख

की कान्ति, मोर-पंखों में केश, और नदी

की इठलाती हल्की लहरों में चंचल भौंहों

की समता मैं देखता हूँ। पर हा! एक स्थान

में कहीं भी, हे रिसकारिणी, तुम्हारी जैसी

छवि नहीं पाता।

42

त्वामालिख्य प्रणयकुंपितां धातुरागैः शिलाया-

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।

अस्त्रैस्तावत्मुहुरूपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्ननपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः।।

हे प्रिये, प्रेम में रूठी हुई तुमको गेरू के रंग
से चट्टान पर लिखकर जब मैं अपने आपको
तुम्हारे चरणों में चित्रित करना चाहता हूँ,
तभी आँसू पुन: पुन: उमड़कर मेरी आँखों
को छेंक लेते हैं। निष्ठुर दैव को चित्र में भी
तो हम दोनों का मिलना नहीं सुहाता।

43

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशा: पतन्ति।।

हे प्रिये, स्वप्न दर्शन के बीच में जब तुम
मुझे किसी तरह मिल जाती हो तो तुम्हें
निठुरता से भुजपाश में भर लेने के लिए मैं
शून्य आकाश में बाँहें फैलाता हूँ। मेरी उस
करुण दशा को देखनेवाली वन-देवियों के
मोटे-मोटे आँसू मोतियों की तरह तरु-पल्लवों
पर बिखर जाते हैं।

44

भित्वा सद्य: किसलयपुटान्देवदारूद्रुमाणां

ये तत्क्षीरस्त्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ता:।

आलिङ्ग्यन्ते गुणवति! मया ते तुषाराद्रिवाता:

पूर्वं स्पष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति।।

हे गुणवती प्रिये, देवदारु वृक्षों के मुँदे पल्लवों को खोलती हुई, और उनके फुटाव से बहते हुए क्षीर-निर्यास की सुगन्धि लेकर चलती हुई, हिमाचल की जो हवाएँ दक्खिन की ओर से आती हैं, मैं यह समझकर उनका आलिंगन करता रहता हूँ कि कदाचित वे पहले तुम्हारे अंगों का स्पर्श करके आई हों।

45

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा

सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।

इत्यं चेतश्चटुलनयने! दुर्लभपार्थनं में

गाढोष्माभि: कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभि:।

हे चंचल कटाक्षोंवाली प्रिये, लम्बे-लम्बे तीन पहरोंवाली विरह की रात चटपट कैसे बीत जाए, दिन में भी हर समय उठनेवाली विरह की हूलें कैसे कम हो जाएँ, ऐसी-ऐसी दुर्लभ साधों से आकुल मेरे मन को तुम्हारे विरह

की व्यथाओं ने गहरा सन्ताप देकर बिना

अवलम्ब के छोड़ दिया है।

46

नन्वात्मार्न बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे

तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मा गम: कातरत्वम्।

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दु:खमेकान्ततो वा

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।

प्रिये! और भी सुनो। बहुत भाँति की

कल्पनाओं में मन रमाकर मैं स्वयं को धैर्य

देकर जीवन रख रहा हूँ। हे सुहागभरी, तुम

भी अपने मन का धैर्य सर्वथा खो मत

देना।

कौन ऐसा है जिसे सदा सुख ही मिला

हो और कौन ऐसा है जिसके भाग्य में सदा

दु:ख ही आया हो? हम सबका भाग्य पहिए

की नेमि की तरह बारी-बारी से ऊपर-नीचे

फिरता रहता है।

47

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ

शेषान्मासान् गमय लोचने मीलयित्या।

पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं

निर्वेक्ष्याव: परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।।

जब विष्णु शेष की शय्या त्यागकर उठेंगे
तब मेरे शाप का अन्त हो जाएगा। इसलिए
बचे हुए चार मास आँख मींचकर बिता
देना। पीछे तो हम दोनों विरह में सोची हुई
अपनी उन-उन अभिलाषाओं को कार्तिक
मास की उजाली रातों में पूरा करेंगे।

48

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्ट: स्वप्ने कितव! रमयन्कामपि त्वं मयेति।।

तुम्हारे पति ने इतना और कहा है - एक बार
तुम पलंग पर मेरा आलिंगन करके सोई हुई
थीं कि अकस्मात रोती हुई जाग पड़ीं। जब
बार-बार मैंने तुमसे कारण पूछा तो तुमने
मन्द हँसी के साथ कहा - "हे छलिया, आज
स्वप्न में मैंने तुम्हें दूसरी के साथ रमण
करते देखा।"

49

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा

मा कौलीनाच्चकितनयने! मध्यविश्वासिनी भू:।

स्नेहानाहु: किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-

दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा: प्रेमराशीभवन्ति।।

इस पहचान से मुझे सकुशल समझ लेना।

हे चपलनयनी, लोकचबाव सुनकर कहीं मेरे

विषय में अपना विश्वास मत खो देना।

कहते हैं कि विरह में स्नेह कम हो जाता

है। पर सच तो यह है कि भोग के अभाव

में प्रियतम का स्नेह रस के संचय से प्रेम

का भंडार ही बन जाता है।

50

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते

शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत:।

साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि

प्रात: कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथा:।।

पहली बार विरह के तीव्र शोक की दु:खिनी

उस अपनी प्रिय सखी को धीरज देना।

फिर उस कैलास पर्वत से, जिसकी चोटी

पर शिव का नन्दी ढूसा मारकर खेल करता

है, तुम शीघ्र लौट आना। और गूढ़ पहचान

के साथ उसके द्वारा भेजे गए कुशल सन्देश

से मेरे सुकुमार जीवन को भी, जो प्रात:काल

के कुन्द पुष्प की तरह शिथिल हो गया है,

ढाढ़स देना।

51

कच्चित्सौम्य! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।

नि-शब्दो•पि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य:

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव।।

हे प्रिय मित्र, क्या तुमने निज बन्धु का यह

कार्य करना स्वीकार कर लिया? मैं यह

नहीं मानता कि तुम उत्तर में कुछ कहो

तभी तुम्हारी स्वीकृति समझी जाए। तुम्हारा

यह स्वभाव है कि तुम गर्जन के बिना भी

उन चातकों को जल देते हो, जो तुमसे

माँगते हैं। सज्जनों का याचकों के लिए

इतना ही प्रतिवचन होता है कि वे उनका

काम पूरा कर देते हैं।

52

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे

सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान्देशाञ्जलद! विचर प्रावृषां संभृत श्री-
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः।।

हे मेघ, मित्रता के कारण, अथवा मैं विरही
हूँ इससे मेरे ऊपर दया करके यह अनुचित
अनुरोध भी मानते हुए मेरा कार्य पूरा कर
देना। फिर वर्षा ऋतु की शोभा लिये हुए
मनचाहे स्थानों में विचरना। हे जलधर,
तुम्हें अपनी प्रियतमा विद्युत् से क्षण-भर के
लिए भी मेरे जैसा वियोग न सहना पड़े।